अध्याय–2

NOTES

भाषा-विज्ञान : अर्थ, स्वरूप एवं अध्ययन क्षेत्र

अध्याय में प्रस्तुत हैं :

- परिचय
- भाषा विज्ञान का स्वरूप
- भाषाविज्ञान की वैज्ञानिकता
- भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र
- भाषाविज्ञान की व्याप्ति
- भाषाविज्ञान के अध्ययन की दिशाएँ
- सार–संक्षेप
- अभ्यास–प्रश्न

अध्ययन के उद्‌देश्य

इस इकाई के तहत सम्मिलित किए गए विषय–वस्तु के माध्यम से अध्येता छात्र को निम्नलिखित जानकारियाँ दिए जाने का उद्‌देश्य निहित है ।

1. भाषाविज्ञान के स्वरूप को उद्‌घाटित किया जाना।
2. भाषाविज्ञान की व्याप्ति पर प्रकाश डालना।
3. भाषाविज्ञान के अध्ययन की दिशाओं पर विवेचनात्मक जानकारी प्रस्तुत करना।

परिचय

भाषाविज्ञान मानव समुदाय द्वारा व्यवहृत किसी भी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह सर्वविदित है कि भाषा–व्यवहार सामाजिक व्यवहार का एक अभिन्न एवं अनिवार्य कारक है। यद्यपि भाषाविज्ञान में मानव की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन होता है तथापि यह परम सिद्ध है कि संसार में कोई प्राणी भाषाविहीन नहीं होता। इस प्रकार भाषा की महत्ता सर्वसिद्ध है। भाषाविज्ञान में भाषा के विविध पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत होता है।

भाषा विज्ञान का स्वरूप

आधुनिक युग विशेषज्ञता का है। आज मानव–ज्ञान की प्रत्येक शाखा–प्रशाखा का सूक्ष्म एवं गहरा अध्ययन हो रहा है। मनुष्य के व्यक्तिगत दैनिक जीवन में ही नहीं अपितु सामाजिक जीवन में भी भाषा का महत्त्व स्वयंसिद्ध है। इस महत्त्व के परिणाम स्वरूप ही 19 वीं शताब्दि में, भाषाविज्ञान अध ययन का एक अलग विषय बन गया और यूरप के अनेक विद्वान् इसके गंभीर अध्ययन में प्रवृत्त हुए।

यूं तो, प्राचीन भारत में भी वाक् वाणी, भाषा, लिपि, व्याकरण आदि के संदर्भ में भाषाविषयक विवेचन हुआ मिलता है किंतु यह एक निर्विवाद सत्य है कि एक स्वतंत्र विषय के रूप में, इसका उद्‌भव और विकास पाश्चात्य देशों में ही हुआ है तथा गत दो–तीन शताब्दियों में, उन्हीं के प्रभाव स्वरूप, इसका भारत में आगमन हुआ है।

अँग्रेजी में इस विज्ञान के कई नाम–'फिलॉलोजी', 'सायंस आव लैंग्वेज' 'कम्पैरेटिव फिलॉलोजी'–प्रचलित हैं। फ्रान्स में इसे लोग 'लिग्विस्तिक' तथा जर्मनी में 'स्प्राख विशेन शैट' नाम से अभिहित करते हैं।

इस देश में अँग्रेजी के प्रचार एवं प्रसार के कारण ज्ञान–विज्ञान संबंधी अनेक विषयों का नामकरण भी अंग्रेजी के आधार पर ही हुआ है। हिंदी में आज इस विज्ञान के लिए 'भाषाविज्ञान', 'भाषाशास्त्र', 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' नाम तो स्पष्ट रूप से 'सायंस आव लैंग्वेज' का अनुवाद है।

ग्रीक में ही भाषाविज्ञान को (Logology) भी कहा जाता था। तो जर्मनी में भी सैकड़ों वर्षो तक इसको Sprach wissenhaft कहा जाता रहा। मैक्समूलर ने इसको "Science of language" कहा तो श्री टी. जी. टकर ने (अपनी पुस्तक Introduction to Natural history of Language esa ½ Science of Tongue (जिह्वाविज्ञान) अथवा Glottology जैसी संज्ञायें प्रदान की। श्री प्रीचर्ड भी इस मत के थे। निश्चयता श्री टकर ने इस नाम को सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध किया था, लेकिन ''यह एक रहस्य है कि विद्वान इस नाम को नहीं अपना सके।'' श्री डेबीज ने इसी को ग्लासौलौजी (Glossology) कहा। इसी प्रकार व्याकरण के अंतर्गत और तुलनात्मक अध्ययन प्रधानता के कारण, कभी–कभी इसको तुलनात्मक व्याकरण (Comparative Grammar) तुलनात्मक भाषाविज्ञान (Comparative Philology), तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान (Comparative and historical Linguistics) आदि भी कहा गया, यद्यपि यह जानकर कि प्रत्येक शास्त्रीय अध्ययन तुलनात्मक और ऐतिहासिक होता है, यह व्यर्थ की पूँछ हटा दी गयी। अन्य नाम भी विशेष प्रचलित नहीं हो पाये। आज तो पाश्चात्य जगत में भाषाविज्ञान के लिये सर्वव्यापी, सर्वप्रचलित और सर्वेमान्य शब्द Philiology और Linguistics ही हैं जो प्रायः समानार्थी रूप धारण किये हुए हैं।

भारत वर्ष में, प्राचीन काल में, भाषाविज्ञान को निर्वचनशास्त्र, शब्दानुशासन, शब्दशास्त्र, वाक्‌ज्ञानादि संज्ञाएँ दी गयी थीं जो आज अव्यवहारिक हो चुकी है। हिंदी जगत के संदर्भ में देखे तो डॉ. उदयनारायण तिवारी के शब्दों में ''आज हिंदी में फिलालॉजी तथा लिग्विस्टिक्स के लिए पृथक् शब्दों

की आवश्यकता है। ....अमेरिकी भाषाशास्त्रियों के दृष्टिकोण के आधार पर ही हिंदी में भी क्रमशः भाषाविज्ञान (फिलालॉजी) तथा भाषाविज्ञान (लिंग्विस्टिक्स) शब्द व्यवहृत किये जाने लगे हैं '' निश्चयतः इनमें सर्वाधिक प्रचलित और मान्य प्रथम शब्द अर्थात् भाषा विज्ञान ही है। आगे वे कहते हैं–

वस्तुतः भारतवर्ष में शास्त्र का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में होता रहा है। भाषा–विज्ञान नाम आधुनिक है। शास्त्र के अंतर्गत विज्ञान के परिप्रेक्ष्य भी आते रहे हैं, लेकिन प्रभाव क्षेत्र की दृष्टि से अब यह सीमित हो गया है। शास्त्र के साथ स्थिरता का भाव जुड़ गया है, जबकि विज्ञान में गत्यात्मकता का बोध होता है। इसलिये विज्ञान नाम उपयुक्त है।''

व्युत्पत्ति और रूप की दृष्टि से, 'भाषाविज्ञान' शब्द एक समासयुक्त और अन्वर्थ संज्ञा है जो 'भाषा' और 'विज्ञान' दो शब्दों से निर्मित है। इसका सामान्य अभिधार्य है–भाषा का विज्ञान। ''व्युत्पत्ति की दृष्टि से देखें तो ''भाषा शब्द संस्कृत की 'भास' धातु जिसका अर्थ व्यक्त वाक 'व्यक्तायां वाचि' अर्थात् प्रकट की गयी, कही गयी या उच्चरित की गयी वाणी है तथा 'विज्ञान' शब्द 'वि' उपसर्गपूर्वक 'ज्ञा' धातु में 'ल्युट' (अन्) प्रत्यय लगाने पर बनता है'' जिसका अभिधार्थ है–'विशेष ज्ञान'। अर्थ की दृष्टि से इसका सर्वोत्तम पर्यायी पाश्चात्य शब्द–'फिलालॉजी' (Philology) है जो स्वयं दो ग्रीक शब्दों चैपस. स्वहवे से निर्मित शब्द है तथा जिसमें चैपस 'शब्द' (World) का अर्थ द्योतक है तो स्वहवे या इससे बना स्वहल शब्द विज्ञान (Science) का अर्थद्योतक है। दृष्टव्य बता यह भी है कि भाषाविज्ञान (Philology) नामक विषय का उद्भव भी ग्रीक में ही हुआ माना जाता है। सारांश में, कह सकते हैं कि भाषाविज्ञान वह विषय (शास्त्र या विज्ञान) है जिसमें भाषाविषयक विभिन्न पक्षों का अध्ययन व्यवस्थित अथवा वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है।

संभवतः इसी आधार पर प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने कहा है–''भाषाविज्ञान का सीधा सा अर्थ है–भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है, विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलाएगा।''

यहाँ यह बात स्पष्टतया समझ लेनी चाहिए कि जहाँ तक इस विज्ञान से संबंध है, हिंदी में 'विज्ञान' एवं 'शास्त्र', दोनों, शब्द पर्याय रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार 'भाषाविज्ञान' तथा 'भाषाशास्त्र' एवं 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' और 'तुलनात्मक भाषाशास्त्र' में कोई अंतर नहीं है। ठीक इसी पर्याय रूप में, किसी समय में, यूरप में, फिलॉलोजी' तथा 'लिग्विस्टिक' शब्द भी लिए गये थे। इनमें 'फिलॉलोजी' का व्यवहार, विशेषरूप से इंग्लैंड के भाषाविद करते थे। चूंकि भाषा एक व्यवस्था है और प्रत्येक व्यवस्था का व्यवस्थित क्रम में विश्लेषण विज्ञान का विषय है। अतः भाषाविज्ञान नाम अधिक उपयुक्त है और प्रायः सर्वस्वीकार्य भी।

भाषाविज्ञान अपने वर्तमान स्वरूप में एक आधुनिक ज्ञानशाखा है, जिसका जन्म अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम दर्शकों में हुआ। इसके जनक सर विलियम जोन्स को माना जा सकता है। उन्होंने रॉयल एशिपाटिक सोसाइटी के सदस्यों के सामने एक निबन्ध प्रस्तुत किया, जिसमें संस्कृत, ग्रीक और लैटिन आदि भाषाओं में पाये गये साम्य के आधार पर यह मत व्यक्त किया गयाथा कि भारत और योरोप की भाषाएं एक ही स्रोत से विकसित हुई हैं। इस विचार ने विद्वानों में हलचल मचा दी। भारत और योरोप की भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन का सिलसिला शुरू हुआ। यही भाषाविज्ञान का प्रारम्भ बिन्दु था।

प्राचीनकाल में पाश्चात्य देशों में भाषाविज्ञान और व्याकरण के क्षेत्र में उतना गहन अध्ययन नहीं हुआ, जितना भारत में। यूनान में सुकरात, प्लेटो, अरस्तू और डायोनिमस थ्रैक्स आदि के कई भाषावैज्ञानिक विषयों का गम्भीर विवेचन किया है जिनमें सुकरात की शब्द और अर्थ के अन्तःसम्बन्ध की स्थापना, प्लेटो का ध्वनियों का वर्गीकरण तथा अरस्तू का पदविचार उल्लेखनीय है।

किन्तु इस क्षेत्र में सबसे उल्लेखनीय कार्य थ्रैक्स का है। थ्रैक्स प्रथम योरोपीय व्याकरणकार हैं, जिन्होंने स्वरों और व्यंजनों का दो टूक अन्तर बताते हुए स्वरों को स्वतन्त्र रूप से उच्चरित ध्वनि और व्यंजनों को स्वराश्रित ध्वनि बताया। इसके बाद योरोप में अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक कोई उल्लेखनीय व्याकरणकार नहीं हुआ।

आधुनिक भाषाविज्ञान के क्रमबद्ध अध्ययन की शुरुआत, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सर विलियम जोन्स से होती है। वे कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रमुख जज थे। उन्होंने संस्कृत सीखी और कलकत्ते में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की। उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर भारत, योरोप और ईरान की प्राचीन भाषाओं के एक स्रोत से उत्पन्न होने की सम्भावना व्यक्त की और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया। कोलबुक, श्लेगल ब्रदर्स, हम्बोलडट, रैस्क, ग्रिम और बॉप ने उनके काम को आगे बढ़ाया और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में काफी काम किया। इन भाषावैज्ञानिकों में रैजमस रैस्क और याकोब ग्रिम का ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन विशेष ऐतिहासिक महत्व रखता है। इसे 'ग्रिम नियम' के नाम से जाना जाता है। फ्रांत्ज बॉप ने भी ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन किया, जो स्वरों की तुलना को लेकर था। उन्नीसवीं शताब्दी में भाषावैज्ञानिक अध्ययन में और गहराई आयी। इस काल के भाषाविदों में फ्रैडरिक मैक्समूलर और विलियम ह्विटनी विशेष उल्लेख के हकदार हैं। मैक्समूलर भारतीय वाङ्मय को संसार के सामने प्रतिष्ठित करने वाले पाश्चात्य विद्वानों में अग्रणी माने जाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ग्रासमैन, वर्नर, अस्कोली और येस्पर्सन ने भी भारतीय और योरोपीय भाषाओं की ध्वनियों के तुलनात्मक अध्ययन में कुछ नये पृष्ठ जोड़े। ग्रासमैन का ध्वनि नियम, जो ग्रिम नियम के अपवादों का वैज्ञानिक निराकरण करता है, इस अध्ययन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

बीसवीं शताब्दी में भाषाविज्ञान के अध्ययन में एक नया मोड़ आया। इससे पूर्व विद्वानों का ध्यान विशेषकर ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन पर केन्द्रित था। फर्दिनां द सस्यूर ने भाषिक अध्ययन को वर्णनात्मक और एककालिक स्वरूप प्रदान किया। 1928 में हेग में अन्तर्राष्ट्रीय भाषाविज्ञान परिषद का प्रथम अधिवेशन हुआ और एककालिक अध्ययन के सिद्धान्त को विश्व स्तर पर स्वीकार किया गया। इसके फलस्वरूप विभिन्न देशों में भाषाविज्ञान के चार केन्द्र स्थापित हुए, जिन्हें लन्दन स्कूल, अमेरिकन स्कूल, प्राग स्कूल और कोपनहैगन स्कूल के नाम से जाना जाता है।

लन्दन स्कूल के विद्वानों में डेनियल जोन्स का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने मान स्वरों के निर्धारण में नायक की भूमिका निभायी। इस स्कूल का अध्ययन क्षेत्र प्रमुख रूप से ध्वनिविज्ञान रहा। अमेरिकन स्कूल ने भाषाविज्ञान के सभी क्षेत्रों में काम किया और स्वनिम और रूपिम की संकल्पनाएँ विश्व के भाषावैज्ञानिकों के सामने रखीं। इस स्कूल ने वाक्यविज्ञान, लिपिविज्ञान और भाषाभूगोल के अध्ययन को भी गहराई प्रदान की। इस स्कूल के प्रमुख आचार्य ब्लूमफील्ड हैं, जिनका ग्रन्थ 'लैंग्वेज' भाषाविज्ञान की 'बाइबल' कहलाती है। इस स्कूल ने विश्व को ब्लाक–ट्रेगर, हैरिस, हॉकेट और ग्लीसन जैसे भाषावैज्ञानिक दिये हैं। प्राग स्कूल ने स्वराघात, बलाघात, संगम आदि विषयों पर कार्य किया। जैकबसन, हैले और फांट इसके प्रमुख आचार्य हैं। कोपनहैगन स्कूल का क्षेत्र ग्लोसीमेटिक्स माना जाता है। यह एक जटिल विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध 'ग्लॉसीम' से है, जो ध्वनि की 'स्वनिम' जैसी एक इकाई है।

बीसवीं शताब्दी के भाषावैज्ञानिकों में सस्यूर, सपीर, बोआज, फर्थ और चोम्स्की के नाम विशेष सम्मान के साथ लिये जाते हैं। फर्दिनां द सस्यूर जनेवा विश्वविद्यलाय के प्रोफसेर थे। उन्होंने भाषाविज्ञान के विभिन्न विषयों पर कुछ भाषण दिये जो बाद में कोर्स इन जनरल लिंग्विस्टिक्स नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हुए हैं। सस्यूर ने पहले पहल भाषा को सामाजिक वस्तु बताया और समाजभाषाविज्ञान के अध्ययन के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इसके पश्चात सपीर ने भाषा को मानव चेतना के साथ जोड़ा और कहा कि भाषा वस्तुतः 'चेतना' की वस्तु है, केवल ध्वनियों का समुच्चय नहीं।

बोआज ने भी भाषा के सामाजिक पक्ष की वकालत की। उनका मानना है कि भाषा केवल सम्प्रेषण का माध्यम नहीं है, अपितु किसी जाति या समाज की सम्पूर्ण संस्कृति की वाहिका होती है। फर्थ भी आधुनिक भाषाविज्ञान के आधार स्तम्भों में माने जाते हैं। मात्रा, आघात, विराम और लहजा आदि स्वनगुणों की अर्थभेदकता का सिद्धान्त उकनी अमूल्य देन है। इसी प्रकार भाषाविज्ञान और व्याकरण के क्षेत्र में चेम्स्की का प्रदेय भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे रूपान्तर प्रजनक व्याकरण के जन्मदाता हैं।

इन भाषावैज्ञानिकों के सिवाय इस क्षेत्र में फिशमेन, डेलहाइम्स, गम्पर्ज, फर्ग्यूसन और लेबॉव के कार्य को भी कम नहीं आंका जा सकता। इन्होंने भाषा के अध्ययन को सामाजिक सन्दर्भों के साथ जोड़कर भाषा को देखने की एक नयी दृष्टि प्रदान की है। इनके अतिरिक्त भारत की भाषाओं के अध्येता जार्ज

ग्रियर्सन, ट्रम्प, बीम्स, कैलॉग, वेबर, लासेन, पिशेल, टेसीटरी, स्टीवेन्सन आदि पाश्चात्य विद्वानों का योगदान भी भाषिक अध्ययन के क्षेत्र में अविस्मरणीय है।

किन्तु आधुनिक युग में पाश्चात्य विद्वानों ने भाषाविज्ञान के अध्ययन को जो गहराई प्रदान की है, उससे कहीं अधिक गहराई प्राचीन भारतीय चिन्तकों की कृतियों में मौजूद है। यों तो प्राचीन भारत में 'भाषाविज्ञान' नाम से किसी ज्ञानशाखा का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु शिक्षा, निरुक्त और निघण्टु के नाम से ध्वनिविज्ञान, व्युत्पत्तिविज्ञान और कोशविज्ञान का जो सूक्ष्म विश्लेषण वैदिक साहित्य में मिलता है, वह सचमुच अद्भुत है।... और संस्कृत व्याकरण का क्षेत्र तो इतना व्यापक है किवह सहज ही स्वन, स्वनिम, रूप, रूपिम, वाक्यविन्यास, शब्दनिर्माण आदि सारे भाषिक अध्ययन को अपने में समेट लेता है। हमारे यहां ज्ञान का आदि उत्स वेद माने जाते हैं। चार संहिताएं, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद तथा छह वेदांग वैदिक साहित्य के तीन प्रमुख सोपान हैं। वेदांगों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छनद और ज्योतिष की गणना होती है। इनमें से शिक्षा, व्याकरण और निरुक्त भाषाविज्ञान के विषय हैं।

शिक्षा का सम्बन्ध उच्चारण शास्त्र से है, जिसे हम ध्वनिविज्ञान का वैदिक रूप कह सकते हैं। शिक्षा का लक्षण बताते हुए सायणाचार्य ने कहा है– ''वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा।'' अर्थात् शिक्षा सह शास्त्र है, जिसमें वर्ण, स्वर आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि शिक्षाशास्त्र में स्थान, प्रयत्न, मात्रा आदि का इतना सूक्ष्म विवेचन हुआ है कि यन्त्रों और उपकरणों से सम्पन्न आधुनिक भाषाविज्ञान भी उसकी मान्यताओं को चुनौती नहीं दे सकता। अनुमान है कि शिक्षाग्रन्थों की संख्या काफी बड़ी थी, जिनमें अब केवल पाणिनीय शिक्षा ही उपलब्ध है।

प्रातिशाख्य भी उच्चारण सम्बन्धी ग्रन्थ थे। वेदों की 1130 शाखाएं बतायी जाती हैं। इन शाखाओं के उच्चारण में स्थानगत और प्रदेशगत अन्तर था। प्रातिशाख्यों में इसी उच्चारण भेद का निरूपण हुआ है। इन प्रातिशाख्यों को व्यावहारिक ध्वनिशास्त्र और भाषाभूगोल का प्राचीन रूप माना जा सकता है। निरुक्त भी भाषाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। निरुक्तों की सही–सही संख्या ज्ञात नहीं है, परन्तु इस श्रृंखला की एकमात्र उपलब्ध रचना यास्क के निरुक्त से कई पूर्ववर्ती निरुक्तकारों का संकेत मिलता है। इस ग्रन्थ में शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कई प्रश्न उठाये गए हैं, जैसे शब्दों का मूल स्रोत क्या है? क्या सभी शब्दों की व्युत्पत्ति को धातुओं से जोड़ा जा सकता है? क्या धातुओं से व्युत्पन्न और अन्य शब्दों के स्वरूप में कोई मूलभूत अन्तर है? क्या सभी शब्दों की व्युत्पत्ति जान पाना सम्भव है? आदि। इन प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास भी 'निरुक्त' में विद्यमान हैं।

यास्क के निरुक्त को रूपिम की संकल्पना का भी आदि स्रोत मा‍ा जा सकता है। यास्क ने दो प्रकार के शब्द बताए हैं, सखण्ड और अखण्ड। उनके अनुसार सखण्ड वे शब्द हैं जिन्हें लघुतम सार्थक खण्डों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे गुरुत्व, नैपुण्य आदि। निरुक्त का ही उत्तरवर्ती भाग निघण्टु है। यह वैदिक शब्दकोश है, जिसमें वैदिक शब्दों के पर्याय दिए गए हैं।

ज्ञान–विज्ञान की प्राचीन शाखाओं में व्याकरण का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। भारत में संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश में वैयाकरणों की लम्बी परम्परा रही है, जिनमें पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि, भट्टोजिदीक्षित, भर्तृहरि वररुचि हेमचन्द्र, सूरि और मार्कण्डेय के नाम विशेष सम्मान के साथ लिए जाते हैं।

पाणिनि संस्कृत व्याकरण के महर्षि हैं। उनकी 'अष्टाध्यायी' सूत्र शैली में लिखा गया ऐसा परिपूर्ण ग्रन्थ है, जो ध्वनि, पद, कृदन्त, तद्धित, सन्धि, समास और लिगानुशासन आदि सभी विषयों का विवेचन करता है। उनकी सबसे बड़ी देन शब्दनिर्माण प्रक्रिया है, जिसके सहारे भारतीय भाषाएँ हजारों वर्षों से अपनी शब्दसम्पदा को समृद्ध बनाती आयी हैं। कात्यायन संस्कृत व्याकरण में वार्तिककार के नाम से जाने जाते हैं। उन्होंने लगभग 1500 वार्षिक लिखे, जो कहीं पाणिनि के सूत्रों का स्पष्टीकरण करते हैं, तो कहीं छूटी हुई बात को पूरा करते हैं। पतंजलि सूत्रों के भाष्यकार हैं। उनका ग्रन्थ 'महाभाष्य' व्याकरण का प्रौढ़ ग्रन्थ है।

भट्टोजिदीक्षित ने संस्कृत व्याकरण के सिद्धान्तों को सरल शैली में प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'अष्टाध्यायी' के सूत्रों को विषय के अनुसार वैज्ञानिक क्रम दिया है। सूत्रों को स्पष्ट किया है और यथास्थान नियमों के उदाहरण दिये हैं। उनकी 'सिद्धान्तकौमुदी' संस्कृत व्याकरण का प्रवेश द्वार है। भर्तृहरि मौलिक व्याकरणकारों में अग्रणी हैं। उनका 'वाक्यपदीय' पदों और वाक्यों के आपेक्षिक महत्व की मीमांसा करता है। वे वाक्य को भाषा की एकमात्र सार्थक इकाई मानते हैं। जिस वाक्यवाद को आधुनिक विद्वान भाषा–चिन्तन की महान् उपलब्धि मानते हैं, उसका प्रतिपादन बरसों पहले 'वाक्यपदीय' में सम्पूर्णता के साथ विद्यमान है।

वररुचि, हेमचन्द्र सूरि, मार्कण्डेय और पुरुषोत्तम प्राकृत के व्याकरणकार हैं। वररुचि का 'प्राकृत प्रकाश' हेमचन्द्र सूरि का 'सिद्ध हेम शब्दानुशासन', मार्कण्डेय का 'प्राकृतसर्वस्व' और पुरुषोत्तम का 'प्राकृतानुशासन' मध्ययुगीन भाषाओं के स्तम्भ ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों से प्राकृतों के स्वरूपों को समझनेमें तो सहायता मिलती ही है, उनके क्षेत्रीय भेदों और उपभेदों की प्रामाणिक जानकारी भी प्राप्त होती है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषाविज्ञान एक व्यापक और गम्भीर विषय है, जिसे वर्तमान स्वरूप तक पहुँचने में सैकड़ों साल लगे हैं और पाणिनि, पतंजलि और थ्रैक्स से लेकर ब्लूमफील्ड, चोम्स्की, किशोरीदास बाजपेयी और भोलानाथ तिवारी तक सैकड़ों मनीषियों ने इसे अपने ज्ञान और चिन्तन से समृद्ध बनाया है।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में 'भाषाविज्ञान' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं मिलता। ध्वनिविज्ञान के लिए 'शिक्षा', व्युत्पत्तिविज्ञान के लिए 'निरुक्ति' और शब्द या पदविज्ञान के लिए 'व्याकरण' शब्दों का प्रयोग होता है। संस्कृत व्याकरण का क्षेत्र काफी व्यापक है और वह अपनी परिधि में भाषिक अध्ययन के प्रायः सभी विषयों को समेट लेता है। परन्तु संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण के लिए 'शब्दानुशासन', 'शब्दशास्त्र', 'निर्वचनशास्त्र' आदि कई नामों का उल्लेख मिलता है। अतः पारिभाषिक अर्थ में इनमें से कोई भाषाविज्ञान नाम का विकल्प नहीं बन सकता। एक तो वे शास्त्र शब्द या पद के निरूपण तक सीमित हैं और दूसरे भाषाविज्ञान और व्याकरण की प्रकृति में भी भारी अन्तर है। व्याकरण जहां किसी भाषा के नियमों का विधान मात्र करता है, वहां भाषाविज्ञान उनके इतिहास की छानबीन करता है और भाषिक सिद्धान्तों के विश्लेषण की जिम्मेदारी निभाता है।

आधुनिक काल में हिन्दी के भाषाविदों ने भी इसे 'भाषाशास्त्र', 'भाषालोचन' और 'भाषिकी' आदि कई नामों से अनिहित किया है। परन्तु इनमें से कई नाम लोकप्रिय नहीं हो पाया। यों तो 'भाषाविज्ञान' नाम भी सर्वथा निर्दोष नहीं है और भाषा के अध्ययन को रसायनविज्ञान और भौतिक विज्ञान जैसे शुद्ध विज्ञानों की पंक्ति में बैठा देता है, जबकि भाषिक नियम उतने ठोस और निरपवाद नहीं होते। फिर भी 'भाषाविज्ञान' नाम इस ज्ञान शाखा की प्रकृति के अधिक निकट है।

भाषाविज्ञान भाषा के विभिन्न अवयवों और पहलुओं का विवेचन करने वाली वह विद्याशाखा है जिसमें उसकी संरचना, प्रकृति और विकास की विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

जैसा कि पिछले पृष्ठों में उल्लेख किया गया है, भाषा–विज्ञान का अध्ययन 'तुलना' से प्रारम्भ हुआ और वह 'इतिहास तथा विकासक्रम' से होता हुआ 'एककालिकता' और 'वर्णनात्मकता' तक पहुंचा। इन दिशाओं ने भाषाविज्ञान की परिभाषाओं को भी प्रभावित किया है। डॉ. भोलनाथ तिवारी लिखते हैं कि, ''जिस विज्ञान के अन्तर्गत समकालीन, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रायोगिक अध्ययन के सहारे भाषा सामान्य की उपत्पत्ति, गठन, प्रकृति और विकास आदि की सम्यक् व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिद्धान्तों का निर्धारण हो उसे 'भाषाविज्ञान' कहते हैं।

यह अनावश्यक लम्बी परिभाषा है। भाषाविज्ञान का काम ध्वनि, शब्द, पदरचना, वाक्यरचना और अर्थ आदि भाषिक इकाइयों से सम्बन्धित नियमों का अध्ययन करना है। यदि यह कार्य दो भाषाओं को लेकर किया जाता है तो वह तुलनात्मक अध्ययन कहलाएगा, एक भाषा के विकास के विभिन्न सोपानों को लेकर किया जताा है, तो ऐतिहासिक, एक भाषा के एक काल बिन्दु को लेकर किया जाता है तो समकालीन या एककालिक तथा व्यावहारिक प्रयोजन से किया जाए तो प्रयोगिक कहलाता है। असली बात तो भाषिक नियमों का निर्धारण है। अतः सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि, 'भाषाविज्ञान भाषा के विभिन्न अवयवों से सम्बन्धित नियमों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।

भाषाविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है। समस्त संसार की विगत और वर्तमान भाषाओं का अध्ययन इसकी परिधि में आ जाता है। एक तरफ तो यह निर्धारित सिद्धान्तों के आधार पर भाषा विशेष का अध्ययन करता है, तो दूसरी ओर विभिन्न भाषाओं के अध्ययन द्वारा कुछ सुनिश्चित नियमों का निध ारण भी करता है। भाषाविज्ञान के अध्ययन की पहली प्रविधि व्यावहारिक भाषाविज्ञान के दायरे में आती है तो दूसरी सैद्धान्तिक दायरे में।

भाषाविज्ञान की वैज्ञानिकता

भाषाविज्ञान एक पूर्ण विज्ञान है। उसके नियम भौतिक विज्ञान और गणित की तरह निरपवाद हैं। जो अपवाद दिखायी देते हैं, वे केवल आरोपित हैं, अपवादभास हैं। उदाहरण के लिए भाषाविज्ञान कहता है कि ''भाषा परम्परागत वस्तु है, उसका निर्माण नहीं किया जा सकता।'' एस्पिरेन्तो के जन्म को इस नियम का अपवाद बताया जा सकता है। एस्पिरेन्तो एक कृत्रिम भाषा थी, जिसका निर्माण डॉ. जोमन हॉफ ने किया और 1887 के करीब उसे विश्व भर के भाषाविदों के सामने रखा। वे इसे विश्वभाषा बनाना चाहते थे, ताकि भाषा की दीवारें मानव–मानव के बीच व्यवधान न बनें। उनके इस प्रयास को व्यापक समर्थन मिला। एस्रिेन्तो में पुस्तकें लिखी गयीं। पत्रिकाएं निकलीं। परन्तु वह जीवित नहीं रह सकीं और आज कुछ ही लोग इसे जानते हैं। कारण स्पष्ट है, भाषा परम्परागत वस्तु है। उसका निर्माण नहीं होता।

ध्वनियों का उच्चारण, ध्वनियों का एक सुनिश्चित दिशा में विकास, पदरचना में सरलता का आग्रह, अर्थपरिवर्तन के सुनिश्चित कारण आदि अनेक बातें हैं, जो भाषाविज्ञान की वैज्ञानिकता प्रमाणित करती हैं। संस्कृत व्याकरण की शुद्धता और अपवादहीनता भी भाषाविज्ञान की वैज्ञानिकता की पुष्टि करती है।

भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र

भाषा हमारे भावों और विचारों की वाहक है, जिन्हें वह वाक्यों के माध्यम से वहन करती है। वाक्यों के खण्ड 'पद' कहलाते हैं और पदों के खण्ड 'ध्वनि'। अतः ध्वनि, पद तथा वाक्यभाषा के अवयव हैं, जिनसे उसके शरीर की रचना होती है। अर्थ भाषा की आत्मा है। उसके बिना इन अवयवों का कोई अस्तित्व नहीं। भाषाविज्ञान भाषा के इन्हीं घटकों का अध्ययन करता है। अतः भाषाविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थविज्ञान का समवेश होता है।

ध्वनिविज्ञान—यह भाषाविज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत ध्वनि के स्वरूप, उसकी उच्चारणप्रक्रिया, उसके भेद–उपभेद, बलाघात, स्वराघात, अनुनासिकता आदि का अध्ययन किया जाता है। आज ध्वनिविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। मानस्वर और स्वनिम विज्ञान के अध ययन ने उसे बहुत गहराई प्रदान की है। मानस्वरों के माध्यम से किसी की भाषा के स्वरों के सही–सही स्वरूप को जाना जा सकता है। उधर स्वनिम विज्ञान दो भाषाओं की ध्वनियों के साम्य–वैषम्य को जानने–समझने में सहायता करता है।

ध्वनिविज्ञान में ध्वनिपरिवर्तन की विभिन्न स्थितियों का भी अध्ययन किया जाता है। संस्कृत के अग्रि, हस्त, कर्म आदि शब्द किन–किन ध्वनिपरिवर्तनों से होते हुए आग, हाथ और काम बन गये, इसका विश्लेषण करना ध्वनि का विषय है।

पदविज्ञान—शब्दों और पदों का अध्ययन पद विज्ञान के क्षेत्र में आता है। पद के स्वरूप का विवेचन, शब्द, सम्बन्धत्व और पद के अन्तःसम्बन्ध का अध्ययन, संबा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय आदि भेदों का ज्ञान, लिंग, वचन, कारक, पुरुष काल और क्रियार्थ आदि व्याकरणिक कोटियों का परिचय पदविज्ञान के प्रमुख विषय हैं।

पदविज्ञान में शब्दविज्ञान का भी अन्तर्भाव होता है। जिसमें शब्द निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। उपसर्ग, प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से शब्दों की निष्पत्ति शब्दविज्ञान का प्रमुख विषय है। संस्कृत व्याकरण में धातुओं और शब्दों से नये शब्द बनाने के लिए क्रमशः कृत और तद्धित प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता था। उस प्रक्रिया का अध्ययन करना भी भाषा–विज्ञान के इस अंग का कार्य है।

रूपिम की अवधारणा ने पदविज्ञान के अध्ययन को बहुत सूक्ष्मता प्रदान की है। इसमें उपसर्ग, प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति और परसर्ग जैसी लघुतम भाषिक इकाइयों का पृथक्करण किया जाता है। रूपिम के अध्ययन से किसी भाषा के व्याकरणिक स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है।

वाक्यविज्ञान—वाक्य के स्वरूप और भेदों का अध्ययन वाक्यविज्ञान का विषय है। वाक्य का गठन कुछ पदो ंके संयोग से होता है, जिन्हें एक विशिष्ट क्रम से रखना जरूरी होता है, इसे 'पदक्रम' कहते हैं। अयोगात्मक भाषाओं में पदक्रम का व्याकरणिक महत्व होता है। वाक्यविज्ञान में प्रमुख रूप से पदक्रम का अध्ययन किया जाता है।

वाक्यविज्ञान के अध्ययन में भी पिछले वर्षों में बहुत गहराई आयी है। भाषाओं का आकृतिमूलक वर्गीकरण और वाक्य का विभाजन इस विज्ञान के अपेक्षाकृत नवीन अध्ययन विषय हैं। वाक्यपरिवर्तन पर भी पिछले दिनों काफी अध्ययन हुआ है।

इसके अतिरिक्त वाक्यविज्ञान में रचना, अर्थ, व्याकरण आदि की दृष्टि से वाक्यों का वर्गीकरण भी किया जाता है।

अर्थविज्ञान—अर्थ भाषा का प्राणतत्व है। ध्वनि, पद और वाक्य की सार्थकता इनकी अर्थवत्ता में निहित है। अर्थविज्ञान में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है, जिसके अन्तर्गत संकेतग्रह के साधक और बाधक कारणों तथा शब्द शक्तियों का समावेश होता है। भाषा एक परिवर्तनशील वस्तु है। उसकी यह प्रकृति सबसे ज्यादा अर्थ को प्रभावित करती है। शब्दों का अर्थ बड़ी तेजी से बदलता है। अर्थविज्ञान में अर्थ्परिवर्तन की दिशाओं और अर्थपरिवर्तन के कारणों का भी अध्ययन किया जाता है। कभी शब्द संकुचित अर्थ को छोड़कर विस्तृत अर्थ ग्रहण कर लेता है तो कभी विस्तृत अर्थ को छोड़कर संकुचित। कभी शब्द का अर्थ पूरी तरह बदल जाता है और विश्वास भी नहीं होता कि इस अर्थ के मूल में इतना भिन्न अर्थ समाया हुआ है। उधर लक्षणा, प्रयत्न, लाघव, सादृश्य, अज्ञान, भावुकता, सौजन्य, परिवेश आदि कारण अर्थ को प्रभावित करते हैं, जिनके चलते 'बुद्ध' बुद्धू बन जाते हैं 'असुर' राक्षस।

उपरोक्त के अलावा आधुनिक भाषाविज्ञान में अनेक अध्ययन के क्षेत्र समाहित किए गए हैं, जो भाषाविज्ञान के महत्व को विस्तार देते हैं, जिनमें कोश विज्ञान, व्याकरण, व्युत्पत्तिविज्ञान, भाषाभूगोल, समाजभाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान आदि प्रमुख हैं।

भाषाविज्ञान को परिभाषित करने के लिए कतिपय भारतीय एवं पाश्चात्श्य भाषावैज्ञानिकों के विचार इस प्रकार हैं—

1. ''भाषाविज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषा मात्र के भिन्न—भिन्न अंगों एवं स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाता है ।'' ...*डॉ. श्यामसुंदर दास*
2. ''भाषाविज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन करना है ।'' ...*डॉ. बाबूराम सक्सेना*
3. ''भाषाविज्ञान उस शास्त्र को कहते है जिसमें भाषा मात्र के भिन्न—भिन्न अंगों का विवेचन, अध्ययन और अनुशीलन करना सीखते है।'' ...*डॉ. उदय नारायण तिवारी*
4. ''जिस विज्ञान के अंतर्गत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा की उत्पत्ति, गठन, प्रकृति एवं विकास आदि का सम्यक व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिद्धांतों का निर्धारण हो, उसे भाषाविज्ञान कहते हैं। ...*डॉ. भोलानाथ तिवारी*
5. ''वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में भाषाओं की आंतरिक संरचना का अध्ययन होता है।'' ...*ग्लीसन*
6. जिसमें लिखित भाषा का अध्ययन किया जाता है, उसे फिलालॉजी और जिसमें बोलचाल की भाषा का अध्ययन किया जाता है, उसे लिंग्विस्टिक्स' कहते हैं।'' ...*एल. ब्लूमफील्ड*
7. ''भाषाविज्ञान भाषा और भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।'' ...*मेरिओपेई*

उपरोक्त सभी परिभाषाओं पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है।

''भाषा या भाषाओं की वैज्ञानिक शैली और विज्ञान–सम्मत दृष्टि से अध्ययन करने वाला शास्त्र या विषय ही भाषाविज्ञान है। निश्चयतः इसमें अध्येय होती है भाष जिसके अंगों, प्रत्यंगों का अध्ययन एकदम वैज्ञानिक ढंग से वैज्ञानिक दृष्टि से, करते हुए वैज्ञानिक अर्थात् तर्कसम्मत निर्णय–निष्कर्ष स्थापित किये जाते हैं। सारांश में कह सकते हैं कि भाषा अथवा भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाला विषय ही भाषाविज्ञान है।

भाषा और भाषाविज्ञान के संबंध में बहुत कुछ जानकारी देने के पश्चात् प्रश्न उठता है कि इसके अध यन के क्षेत्र क्या हैं ? वस्तुतः किसी भाषा का अध्ययन चार भाषिक तत्त्वों–स्वन, स्वनिम, पद और वाक्य पर आधारित होता है। इसी लिए भाषाविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में स्वन और स्वनिम विज्ञान, रूप रचना विज्ञान, वाक्य विज्ञान एवं अर्थविज्ञान आते हैं।

भाषाविज्ञान की व्याप्ति

मानव अपने जीवन में ज्ञान के विविध रूपों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्कित होता रहता है। जब हम अपनी या अन्य किसी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट होता है कि भाषाविज्ञान की व्याप्ति केवल भाषा तक ही सीमित नहीं अपितु इसका संबंध कई सामाजिक विज्ञानों से लेकर शुद्ध विज्ञान विषय वस्तुओं से भी है। जिनका परीक्षण निम्नलिखित अनुसार किया जा सकता है।

भाषा विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान –

शरीर विज्ञान और भाषाविज्ञान–भाषा के उत्पादन में ओठ से लेकर फेफड़े तक के शारीरिक अंगो का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष योगदान रहता है। फेफड़े से निकलती हुई वायु स्वर तंत्री, कंठ, तालु, नासिका विवर आदि से टकराकर ध्वनियों को जन्म देती है। ध्वनियों के वर्गीकरण में शारीरिक अंगों तथा प्राण वायु की स्थिति आदि का ज्ञान आवश्यक होता है। अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग प्रयत्नों से ध्वनि का भेद पैदा होता है। इसकी सही पहचान शरीरविज्ञान से परिचित व्यक्ति को ही हो सकता है। शरीरस्थ वागिन्द्रियों का कार्य मुख्यतया ध्वनि पैदा करना नहीं है किन्तु मनुष्य उनसे यह नया कार्य करवाता है। स्वर के आरोह–अवरोध, दीर्घता–ह्रस्वता आदि का ज्ञान शरीरविज्ञान के द्वारा संभव होता है।

भाषा ध्वनि रूप में वक्ता के मुख से निकलकर श्रोता के कान तक पहुँचती है। श्रवणेन्द्रियों के द्वारा उसका ग्रहण कैसे होता है, इसका ज्ञान शरीर–विज्ञान से ही होता है।

भाषाविज्ञान और भौतिकी–

वक्ता के मुख से निकली हुई ध्वनियाँ शून्य से होकर श्रोता के कान तक पहुँचती हैं। ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान पर कैसे पहुँचती हैं, इस समस्या का निदान प्रस्तुत करती है। भौतिकी। मुक्त आकाश में 'ईथर' के द्वारा ध्वनि तरंगों का संचरण होता है। ध्वनि–गति का सम्यक् अध्ययन भौतिकी का विषय है। भाषाविज्ञान को भाषा के इस कार्य व्यापार की सूक्ष्मता की सूचना भौतिकी के द्वारा ही मिल सकती है।

भाषाविज्ञान और सामाजिक विज्ञान

भाषाविज्ञान और समाजशास्त्र–समाजशास्त्र मनुष्य के सामाजिक क्रिया–कलापों का अध्ययन करता है। सामाजिक क्रिया–कलापों में भाषा का प्रमुख स्थान है। सामाजिक संगठन में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती हैं। सामाजिक संबंधों और परिवर्तनों का प्रभाव भाषा पर पड़ता है और भाषा इन परिवर्तनों को भी तीव्रतर करती है। यदि यह कहा जाय कि एक भाषासमाज भावात्मक दृष्टि से अधि ाक समीप रहता है तो अत्युक्ति न होगी। चूँकि भावों की अभिव्यक्ति भाषा में होती है, इसलिए समाज को जोड़ने और तोड़ने दोनों में ही भाषा की सक्रिय भूमिका होती है।

दो भाषा–समाजों के मिलन को भी भाषा के द्वारा विश्लेषित किय जा सकता है। हिंदी में अरबी–फारसी, अंग्रेजी के शब्दों के आगमन से ही यह पता चल जाता है कि मुसलमानों तथा अंग्रेजों से यहाँ का समाज प्रभावित हुआ है। किसी समाज के रीति–रिवाज तथा परंपरा का ज्ञान किये बिना भाषा का अध्ययन संभव नहीं है।

स्व-प्रगति की जाँच करें

भाषाविज्ञान और नृवंश (नृतत्त्व) शास्त्र –

नृतत्त्व या नृवंशशास्त्र में मानव को उत्पत्ति और विकास का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य का विकास प्राकृतिक और सांस्कृतिक दो रूपों में होता है। सांस्कृतिक विकास में भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आदिम मानव से संबंधित भाषा का सम्यक् अध्ययन किये बिना उसकी अभिरूचि, सामाजिक व्यवस्था, रीति–रिवाज और सृजनशीलता का सम्यक् विवेचन नहीं किया जा सकता है। इस कार्य को सुंदर बनाने में भाषाविज्ञान उसकी सहायता करता है। नृवंशशास्त्र भी भाषाविज्ञान के लिए कुछ ऐसी सामग्री देता है जिससे उसकी भाषागत समस्याओं का उचित समाधान मिलता हैं। प्रजातीय संबंधों, मिश्रणों आदि का भाषा पर कहाँ तक असर पड़ता है इसकी जानकारी नृवंशशास्त्र के सहारे ही मिलती है। इस तरह हम देखते हैं कि भाषाविज्ञान और नृवंशशास्त्र एक –दूसरे के अध ययन में सहायक सिद्ध होती हैं ।

भाषाविज्ञान और भूगोल–

भूगोल में भू–मंडल की आकृति, जलवायु, मानव–आवास, उपज, खनिज,–उत्पादन आदि का अध ययन किया जाता है। भौगोलिक संरचना तथा परिवेश का भाषा पर भी प्रभाव पड़ता है। कुछ भाषा–वैज्ञानिकों का विचार है कि जलवायु का असर मानव की उच्चारण –पद्धति पर भी पड़ता है। शीत प्रदेश के लोगों का मुँह अधिक नहीं फैलता है, इसीलिए उनके द्वारा उच्चरित ध्वनियाँ बहुत स्पष्ट नहीं रहती हैं। अंग्रेजी में बहुत सी ध्वनियों का अनुच्चरित रह जाना जीभ के अत्यधिक तोड़–मरोड़ न कर पाने के कारण है। भाषाओं के सीमा–निर्धारण में भूगोल का ज्ञान काफी सहायता करता है। सीमावर्ती बोलियों में पारस्परिक सम्मिश्रण के कारण उनकी भौगोलिक सीमा निर्धारण भाषाविज्ञान की सहायता से किया जाता है।

भाषा के क्षेत्रीय विस्तार तथा सीमित दायरे के कारण भी भूगोल होता है। किसी छोटे से क्षेत्र में अनेक बोलियों का विकास भू–आकृति से उत्पन्न अवरोधों के कारण होता है। पहाड़ी क्षेत्रों तथा दुर्गम जंगलों क्षेत्रों मे अनेक बोलियों का निर्माण पारस्परिक संपर्क के अभाव के कारण होता है। एक ही भाषा–भाषी जाति भिन्न–भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में बँटकर नये ढंग से भाषा को विकसित करती है।

भाषाविज्ञान और इतिहास –

इतिहास अतीत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थितियों का विकासात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इतिहास की घटनाओं का भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भाषा के स्वरूपतामक परिवर्तन हेतु ऐतिहासिक घटनाएँ पर्याप्त जिम्मेदार होती हैं। राजनीतिक विप्लव, आक्रमण या अन्य कारणों से स्थानान्तरित होने वाली जाति सब दूसरी भाषा जाति के संपर्क में आती हैं तो भाषिक परिवर्तन की गति तेज हो जाती हैं। आभीर आदि जातियों ने भारत में आकर यहाँ की प्रचलित प्राकृतों को बदलकर अपभ्रंश में ढाल दिया। उनके विचारों, रीति–रिवाजों, मान्यताओं तथा धार्मिक आस्था से संबंधित बहुत–सी शब्दावली का भाषा में प्रवेश हुआ। भारतीय भाषाओं में विदेशी शब्दों के समावेश का कारण ऐतिहासिक है। इतिहास से ही यह ज्ञात होता है कि सोने की चिड़िया समझा जाने वाला भारत सदैव विदेशियों की धन लोलुपता का शिकार होता रहा है। समय–समय पर उनके आक्रमण होते रहे हैं। कुछ विदेशी जातियों का यहाँ राजनीतिक आधिपत्य भी स्थापित हुआ। इन्हीं कारणों से भाषा में विदेशी तत्त्वों का समावेश हुआ।

भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान –

भाषा में व्यक्त होने वाले विचार या भाव अमूर्त्त अवस्था में मन में ही अवस्थित रहते हैं। अमूर्त्त भावों तथा विचारों का अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। वक्ता या श्रोता भाषा प्रयोग के समय विभिन्न प्रकार की अनुक्रिया करते हैं। वक्ता के मन में पहले यह भावना आती है कि श्रोता में किस तरह की अनुक्रिया पैदा करनी है। भावात्मक सम्प्रेषणों में तो मानसिक क्रिया–प्रतिक्रिया की प्रत्यक्ष भूमिका रहती है। किसी के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने या घृणा व्यक्त करने के लिए भाषा का चुनाव मन में ही कर लिया जाता है। प्रभावगत तीव्रता भी भाषा प्रयोग पर ही निर्भर करती है। भाषा के अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया मानसिक स्थिति पर निर्भर करती है। एक ही वाक्य अलग–अलग मानसिक स्थिति में अलग– अलग प्रभाव छोड़ता है। किसी वस्तु या व्यक्ति पर नाराज हुए व्यक्ति के आगे जब उस

वस्तु या व्यक्ति का नाम आता है तो क्रोध से उबल उठता है। द्रौपदी के एक ही कटु वाक्य से महाभारत जैसा भयानक युद्ध हो गया। शब्दों का मन पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव कैसे पड़ता है, इसका विवेचन मनोविज्ञान ही कर सकता है। शब्दों में निहित वस्तुओं, भावों तथा विचारों का संप्रत्यय मनुष्य के मस्तिष्क में निर्धारित हो जाता है। एक व्यक्ति जब दूसरे व्यक्ति के आगे उन शब्दों का प्रयोग करता है जिनके अभिप्राय से दोनों परिचित हैं तो उसी तरह का संप्रत्यय श्रोता के मस्तिष्क में उद्‌बुद्ध हो जाता है। भाषा से वक्ता और श्रोता दोनों मानसिक स्तर पर एक– दूसरे से जुड़ जाते हैं। यदि वक्ता और श्रोता के मानसिक धरातल में बहुत अधिक स्तर –भेद होगा तो दोनों के बीच भाषा का हर तरह का प्रयोग पूरी तरह नहीं समझा जा सकेगा।

भाषाविज्ञान और दर्शन –

भाषाविज्ञान और दर्शन का गहरा संबंध है। भाषा के अर्थ पक्ष पर गंभीर विचारों की परंपरा दर्शन से ही शुरू हुई है। ग्रीस और भारत दोनों स्थानों पर भाषा विवेचन में दार्शनिकों ने रुचि प्रदर्शित की है। प्लेटो, अरस्तू ने भाषा के विषय में जो मत प्रस्तुत किये आगे आने वाले भाषा चिंतन पर उनका प्रभाव बना रहा। भारत में वाणी के जो चार रूप माने गये हैं वे दर्शन से ही संबंद्ध हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी आदि भेंदो का आधार दर्शन ही है। वैयाकरणों का स्फोटवाद दर्शन पर आधृत है।

भाषाविज्ञान और मानविकी–

भाषाविज्ञान और साहित्य–भाषा का सृजनात्मक रूप ही साहित्य है। इसकी मौखिक तथा लिखित दोनों ही परम्पराएँ मिलती हैं। लिखित परंपरा से प्राप्त साहित्य के माध्यम से भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन किया जाता है। जिस भाषा का साहित्य उपलब्ध नहीं होता उसका तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन संभव नहीं होता है। ऋग्वेद की प्रांजल तथा उत्कृष्ट भाषा को देखने से लगता है कि इसके पहले भी भाषा थी किन्तु उसका साहित्य उपलब्ध न होने के कारण उसके विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना संभव नहीं हो पाता। संसार की प्रमुख भाषाओं में प्राप्त साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा उनकी पारिवारिक एकता का निष्कर्ष निकाला गया।

भाषाविज्ञान के अध्ययन से साहित्य की कतिपय समस्याओं का निदान आसानी से हो जाता है। शब्दों के स्वरूप–परिवर्तन तथा अर्थ–परिवर्तन से संबद्ध अनेत तथ्यों का सकारण विवेचन भाषाविज्ञान में होता है। इससे साहित्य की समझ सुंदर हो जाती है। गार्भिणी और गाभिन, स्थान और थान के अंतर के कारण को भाषाविज्ञान ही निर्दिष्ट करता है। असुर और सुर में अर्थ का पारस्परिक परिवर्तन क्यों और कैसे हो गया इसका उत्तर भाषाविज्ञान देता है। इस तरह हम देखते हैं कि भाषाविज्ञान और साहित्य एक–दूसरे के अध्ययन में पर्याप्त सहायता देते हैं।

भाषाविज्ञान और व्याकरण –

व्याकरण को भाषाविज्ञान की एक शाखा माना जा सकता है। व्याकरण में भाषा का वर्णनात्मक विवेचन होता है। किन्तु भाषाविज्ञान और व्याकरण के वर्णनात्मक विवेचन में उल्लेखनीय भेद परिलक्षित होता है। भाषाविज्ञान किसी भाषा की संपूर्ण संरचनात्मक विशेषताओं को उद्‌घाटित करता हैं। व्याकरण के अनुशासन से च्युत प्रयोगों को वैयाकरण असाधु प्रयोग कहकर मुक्त हो जाता है जबकि भाषा–वैज्ञानिक साधु–असाधु सभी प्रयोगों को सकारण विवेचन करने का प्रयास करता है। भाषाविज्ञान का अध्ययन–क्षेत्र व्याकरण की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। व्याकरण की तरह इसमें संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, प्रत्यय जैसे कुछ सीमित तथ्यों का ही विवेचन नहीं होता बल्कि ध्वनि, ध्वनि–प्रक्रिया, ध्वनि–परिवर्तन, वाक्य–रचना, अर्थ आदि का भी विवेचन किया जाता है। भाषाविज्ञान में भाषाओं का सम्यक् अनुशीलन करके नये नियमों का निर्माण किया जाता है और व्याकरण में कुछ निश्चित नियमों की कसौटी पर भाषा का विश्लेषण–विवेचन किया जाता है। व्याकरण की तरह भाषाविज्ञान की पद्धति एककालिक मात्र नहीं है बल्कि कालक्रमिक भी है। इसमें भाषा का ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन भी सम्मिलित किया जाता है।

व्याकरण तथा भाषाविज्ञान में घनिष्ठ संबंध होते हुए भी इन दोनों में कतिपय उल्लेखनीय अंतर है। जिन्हें संक्षेप में निम्नलिखित रूप देखा जा सकता है –

1. सर्वप्रथम, भाषा–विज्ञान की गणना विज्ञान में होती है, जबकि व्याकरण की कला के अंतर्गत। दोनों की अध्ययन– पद्धतियों में बहुत अधिक अंतर दृष्टिगत होता है। व्याकरण का उद्देश्य केवल किसी विशेष भाषा के व्यावहारिक उपयोग को दृष्टि में रखकर उसके साधुत्व तथा असाधुत्व का विवेचन करना होता है–किसी भाषा के व्याकरण–ज्ञान के लिए किसी दूसरी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत भाषा–विज्ञान की दृष्टि किसी विशेष भाषा के ज्ञान तक सीमित नहीं रहती। इसके अंतर्गत विभिन्न देश, काल, जीवित, मृत, अतीत–वर्तमान आदि सभी भाषाओं का विवेचन किया जाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि भाषा–विज्ञान का क्षेत्र व्याकरण की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक और विस्तृत है।
2. व्याकरण किसी भाषा के केवल सिद्धस्वरूप का ही प्रतिपादन करता है, इसके विपरीत भाषा–विज्ञान प्रयोग में आने वाली निर्मित भाषा के साथ–साथ बनती हुई या अर्धविकसित भाषा का भी उसी प्रकार अध्ययन करता है।
3. व्याकरण और भाषाविज्ञान का एक बहुत बड़ा अंतर दोनों की अध्ययन पद्धति में है। व्याकरण की अध्ययन प्रणाली वर्णनात्मक अथवा विवरणात्मक होती है किंतु भाषा विज्ञान की अध्ययन पद्धति व्याख्यात्मक तथा विश्लेषणात्मक होती है। उसमें नियमों तथा परिवर्तनों में कार्य कारण संबंधा खोजने की चेष्टा रहती है।
4. भाषाविज्ञान भाषा के विकास पर विचार करके भाषाओं के पारिवारिक संबंधो तथा संगठनात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखकर उनके तुलनात्मक व्याकरण का भी अध्ययन करता है। इस प्रकार, भाषाविज्ञान, भाषाओं के विकास और उनके संगठन के लिये उत्तरदायी विभिन्न नियमों का अनुसंधान भी करता है।
5. व्याकरण तथा भाषाविज्ञान का एक अंतर यह भी है कि व्याकरण की दृष्टि औचित्य तथा नियमबद्धता पर अधिक रहती है। यह शुद्ध नियमबद्ध प्रयोगों की ही अपने अध्ययन का विषय बनाता है। इसके विपरीत भाषा–विज्ञान की दृष्टि वास्तविकता और प्रचलित प्रयोगों पर अधिक रहती है। वह लोक में प्रचलित ग्रामीण, अशुद्ध, व्याकरण की दृष्टि से उपयुक्त न माने जाते वाले भाषिक तत्त्वों, को भी उतना ही महत्त्व देता है जितना व्याकरणसम्मत प्रयोगों का।
6. वास्तव में भाषा विज्ञान व्याकरण के लिये अध्ययन सामग्री प्रदान करता है। अतएवं उसको व्याकरण का आधार भी कहा जा सकता है। व्याकरण भाषा–विज्ञान का एक प्रकार से अनुगामी है। इसीलिये भाषा–विज्ञान को व्याकरण का व्याकरण कहा गया है।

भाषाविज्ञान के अध्ययन की दिशाएँ

भाषाशास्त्र के अंतर्गत भाषा का सामान्य अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। भाषा का भी वैज्ञानिक विश्लेषण कई रूपों में किया जा सकता है। आधुनिकतम भाषाशास्त्र के अंतर्गत किसी भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण निम्नलिखित दिशाओं में किया जाता है –

1. वर्णनात्मक
2. समकालिक
3. ऐतिहासिक
4. तुलनात्मक
5. गठनात्मक

इन उपर्युक्त विश्लेषण पद्धतियों को मोटे तौर पर हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–

1. समकालिक
2. ऐतिहासिक

इन दोनों के भेद–प्रभेदों को समझ लेना बहुत आवश्यक है क्योंकि इनको भलीभाँति समझे बिना अनेक अशुद्धियों की संभावनाएँ हैं।

'समकालिक' इस शब्द का प्रयोग अन्य सामाजिक शास्त्रों के संदर्भ में भी होता है। नृ–विज्ञान के संदर्भ में तो इसका तात्पर्य किसी विशेष समय के कार्यों अथवा समस्याओं से होता है, किन्तु इतिहास से इसका कोई संपर्क एवं संबंध नहीं होता है।

ऐतिहासिक (Diachronic) शब्द भी समकालिक की ही भांति अन्य शास्त्रों के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। वहां इसका 'अर्थ' समय द्वारा उद्भूत परिवर्तन की समस्याओं का अध्ययन करना होता है।

भाषाशास्त्र के संदर्भ में भाषा का अध्ययन करते समय उसके समकालिक स्वरूप को वर्णनात्मक भाषाशास्त्र या व्याख्यात्मक भाषाशास्त्र के नाम से अभिहित किया जाता है तथा उसके ऐतिहासिक संदर्भ के अध्ययन को ऐतिहासिक भाषाशास्त्र के नाम से अभिहित करते हैं। 'ऐतिहासिक' भाषाशास्त्र–नामकरण सर्वथा शुद्ध एवं मान्य है क्योंकि कोई भी इतिहास समय से संबंधित परितर्वनों का वर्णन करता है। किन्तु 'वर्णनात्मक' भाषाशास्त्र नामकरण अपेक्षाकृत कम मान्य है क्योंकि परिभाषतः भाषाशास्त्र के समस्त स्वरूप एवं विश्लेषण मूलतः वर्णनात्मक होते हैं। इसीलिए 'वर्णनात्मक' नामकरण से भ्रम की अनेक संभावनाएँ है। इसके लिए 'समकालिक भाषाशास्त्र' नामकरण अधिक उपयुक्त है। इसके संबंध में आगे विचार किया जाएगा।

समकालिक भाषाविज्ञान–

भाषाविज्ञान के इस स्वरूप के अंतर्गत जीवित बोलियों को अध्ययन किया जाता है। इसकी अध्ययन पद्धति पूर्णतया वर्णनात्मक (व्याख्यात्मक) होती है इसीलिये अनेक भाषाशास्त्री वर्णनात्मक को समकालिक के पर्याय के रूप में ग्रहण करने के पक्ष में हैं। भाषाशास्त्र के इस स्वरूप का अध्ययन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसी के आधार पर भाषा का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन संभव है। वस्तुस्थिति यह है कि जब तक हम किसी भाषा विशेष की विभिन्न अवस्थाओं से परिचित न हो जाये तब तक उसका ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन किया ही नहीं जा सकता।

आधुनिक युग में 'वर्णनात्मक भाषाशास्त्र का अध्ययन वस्तुतः 19 वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में 'भाषा' की आधारभूत एवं महत्त्वपूर्ण इकाई 'ध्वनिग्राम' को मान्यता मिली। अमरीका के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री ब्लूमफील्ड की पुस्तक 'लैंग्वेज' (1932) के प्रकाशन से वर्णनात्मक भाषाशास्त्र अपनी यथार्थ विकास की दशा की ओर उन्मुख हुआ। जिसकी परिणति 'हैरिस' के महानग्रंथ 'मेथड्स इन स्ट्रक्चरल लिग्युस्टिक्स' में वर्णित भाषा–पद्धति में हुई।

पाश्चात्य देशों में वर्णनात्मक भाषाविज्ञान अपेक्षाकृत बहुत नवीन है। किन्तु भारत वर्ष में इस प्रकार के अध्ययन का सूत्रपात पाणिनि काल से ही प्रारंभ हो गया था। महर्षि पाणिानि की विख्यात कृति 'अष्टाध्यायी' इस प्रकार के अध्ययन की कालजयी रचना है।

आधुनिक युग में आज भी पाणिनि के समकक्ष का कोई भी विवरणात्मक भाषा –अध्ययन नहीं रखा जा सकता। उन्हीं की पद्धति का अनुसरण आज अमरीका के भाषाशास्त्री कर रहे हैं। महर्षि पाणिनि के अतिरिक्त भाषा के अध्ययन मार्ग को प्रशस्त करने वालों में कात्यायन तथा पंतजलि का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान –

किसी भाषा की विभिन्न अवस्थाओं का जब हम काल क्रमानुसार अध्ययन करते हैं तो अध्ययन का यह स्वरूप ऐतिहासिक भाषाशास्त्र के अंतर्गत आता है। संसार में एकमात्र सत्य, परिवर्तन है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो कि सर्वदा एक रूपमय रहे। भाषा के विषय में भी कहा जा सकता है। काल क्रमानुसार एक स्थान की भाषा भी परिवर्तित होती रहती है। यह परिवर्तन भाषा में निरंतर होता रहता है, भले ही उसको जानना कठिन हो। एक अवधि के पश्चात् यही अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भाषा के इस परिवर्तन को 'भाषा–विकास' के नाम से अभिहित किया जाता है। इस विकास अवस्था का वर्णन प्रस्तुत करना ऐतिहासिक भाषाशास्त्र के अंतर्गत आता है।

वस्तुतः किसी भाषा की ध्वनियों, रूपों, और अन्य भाषिक तत्त्वों का विकासात्मक अध्ययन ऐतिहाासिक भाषाविज्ञान के दायरे में आता है। उदाहरण के लिए वैदिक भाषा, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी के भाषिक तत्त्वों का विकासात्मक अध्यन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की परिधि में आएगा। इसी

NOTES

प्रकार ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत शब्दों के अर्थगत विकास का अध्ययन भी ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का विषय है। उदाहरण के लिए बुद्ध से बुद्ध, नग्न एवं लुंच से नंगा–लुच्चा जैसे शब्दों में अर्थगत विकास को देखा जा सकता है।

तुलनात्मक भाषाविज्ञान–

इस भाषाशास्त्र के अंतर्गत दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इसी आधार पर भाषा अध्ययन के इस शास्त्र को 'तुलनात्मक भाषाशास्त्र' के नाम से अभिहित किया जाता है। यह अध्ययन समकालिक एवं ऐतिहासिक भाषा सामग्री के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शास्त्र के अंतर्गत एक ही समय की कम से कम दो भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, अथवा एक ही भाषा के विभिन्न कालों की सामग्री का अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है।

वस्तुतः यह भाषाविज्ञान के अध्ययन के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। इस पद्धति को इतना अधिक महत्त्व देने का श्रेय फ्रान्त्स बोप को है। उन्होंने भारत–योरोपीय भाषाओं की तुलना करते हुए, संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, फारसी और जर्मन भाषाओं का विधिवत् तुलनात्मक अध्ययन किया था। तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत विभिन्न भाषाओं का अध्यन, परस्पर ध्वनि, शब्द–समूह, रूप तथा वाक्य–रचना आदि के आधार पर किया जाता है। दो या अनेक भाषाओं के विभिन्न तत्त्वों के तुलनात्मक अध्ययन से भाषा या भाषाओं की प्रारंभिक अवस्था उसकी आंतरिक तथा पाठ्य गठन से संबंधित सिद्धांतों का निर्वारण किया जाता है। 'तुलनात्मक भाषा–विज्ञान का संबंध भाषा के अतीत और वर्तमान के तथ्यों से है। इतिहास प्रस्तुत करता इस प्रकार तुलनात्मक पद्धति द्वारा एक ओर विभिन्न भाषाओं के मध्य साम्य स्थापित होता है, वहीं उनकी विभिन्नता का भी तात्विक बोध होता है। विश्व के प्रमुख भाषा–परिवार, ग्रिम–नियम आदि भाषा संबंधी तुलनात्मक अध्ययन की ही महत्त्वपूर्ण देन है। सच तो यह कि यही पद्धति भाषाविज्ञान का आधारभूत अंग तथा उसके साक्षात रूप की द्योतक है। भाषाविज्ञान के अध्ययन की इन पद्धतियों के अतिरिक्त संरचनात्मक, वर्णनात्मक एककालिक अध्ययन पद्धतियों पर भी दृष्टिपात कर लेना समीचीन होगा।

संरचनात्मक भाषाविज्ञान–

'संरचनात्मक' शब्द के प्रयोग में भाषाविज्ञान जगत में एकरूपता नहीं है। एक तरफ तो कुछ लोगां की ऐसी मान्यता है कि हर भाषा की अपनी विशेष प्रकार की संरचना होती है और हर भाषाविज्ञानी उसी को खोजने का यत्न करता है। इस दृष्टि से किसी भाषा की संरचना पर किसी भी रूप में किया गया कोई भी काम मूलतः संरचनात्मक भाषाविज्ञान का ही काम है, अर्थात् सभी भाषाशास्त्री एक प्रकार के संरचनावादी (स्ट्रक्चरलिस्ट) है, और भाषाविज्ञान का कोई भी नया या पुराना काम असंरचनात्मक नहीं है। सस्यूर, येल्मस्लव, त्रुवेत्स्कॉय, बोआज, सपीर, ब्लूमफील्ड, फेर्थ, याकोब्सन, मार्तिने, पाइक, हैलिडे, लैव, चॉम्स्की आदि सभी प्रसिद्ध भाषाशास्त्रियों को संरचनात्मक भाषाशास्त्री माना गया है। यदि 'संरचना' का मूलार्थ लें तो भाषा के नियम, उसकी नियमितता या उसमें मिलानेवाली अभिरचना (पैटर्न) ही तत्वतः उसकी संरचना है और किसी भाषा के विश्लेषण में सभी भाषाशास्त्री किसी–न–किसी रूप में इसी की खोज करते हैं। इस तरह पहली बात अपने स्थान पर ठीक है। किन्तु भाषा–विश्लेषण के विभिन्न सांचों (मॉडल्ज) के विकास के साथ–साथ 'संरचनात्मक भाषाविज्ञान' का एक विशेष सीमित अर्थ में भी प्रयोग होने लगा है, और यह सीमित अर्थ है ब्लूमफील्ड के अनुयायियों का भाषाविज्ञान। तत्वतः इन्हीं लोगों ने सबसे पहले 'संरचना' (स्ट्रक्चर) शब्द का भाषाविज्ञान के क्षेत्र में सबसे ज्यादा प्रयोग किया, जिसके आधार पर उन्हें 'स्ट्रक्चरलिस्ट' (संरचनावादी) कहा जाने लगा।

संरचनात्मक भाषाविज्ञान के मोटे रूप में दो रूप माने जाते हैं। एक अमेरिकी तथा दूसरा यूरोपीय। एक मतानुसार अमेरिकी संरचनात्मक भाषाविज्ञान ध्वनि, रूप, वाक्य के स्तर पर भाषा की संरचना का अलग–अलग अध्ययन करता है तथा इन तीनों को प्रायः अलग–अलग रखता है, तो यूरोपीय भाषाविज्ञान इन स्तरों को एक दूसरे से सुसंबद्ध करके भाषा का एक समग्र चित्र सामने लाने का यत्न करता है।

एककालिक, वर्णनात्मक तथा संरचनात्मक–

सस्यूर से पहले भाषाविज्ञान मुख्यतः ऐतिहासिक था। सस्यूर ने ही सर्वप्रथम भाषाविज्ञान के दो रूप बताए : एककालिक तथा कालक्रमिक। एककालिक भाषाविज्ञान का अर्थ है किसी भाषा का काल के किसी एक बिन्दु पर विश्लेषण। प्रश्न उठता है, क्या एककालिक तथा वर्णनात्मक भाषाविज्ञान एक ही है? हॉकिट एक स्थान पर कहते हैं 'कोर्ड भाषा किसी एक काल में कैसे कार्य करती है–इस बात के अध्ययन को वर्णनात्मक या एककालिक भाषाविज्ञान कहते हैं। किन्तु तत्वतः दोनों एक नहीं है। उन्होंने स्वयं भी अन्यत्र कहा है, इन दोनों में अंतर है। हॉटिक के अनुसार वर्णनात्मक भाषाविज्ञान भाषा का वर्णन करता है, किन्तु वैयक्तिक, वर्गीय तथा स्थानीय अंतरों की ओर ध्यान नहीं देता। जब कि एककालिक भाषाविज्ञान उन अंतरों के अध्ययन को भी अपने में समेट लेता है। इस प्रकार एककालिक भाषाविज्ञान वर्णनात्मक भाषाविज्ञान को तो अपने में समाहित कर ही लेता है, कुछ और प्रकार के अध्ययन भी उसमें आ जाते हैं। (1970, पृ. 14)।

इसका स्वरूप ऐतिहासिक और तुलनात्मक होता है, जैसे संस्कृत और हिन्दी की तुलना या प्राकृत और अपभ्रंश की तुलना। स्थानगत परिवर्तन का अध्ययन करने के लिए दो पड़ोसी भाषाओं की तुलना की जाती है, जैसे–पंजाबी और हिन्दी, या मराठी और हिन्दी या गुजराती और मराठी की तुलना।

किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि तुलनात्मक भाषाविज्ञान एक ही परिवार की भाषाओं तक सीमित होता है। दो भिन्न–भिन्न परिवारों की भाषाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन होता है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान–

इसका क्षेत्र ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान की अपेक्षा सीमित होता है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान न तो किसी भाषा के अतीत में जाता है और न ही उसकी किसी अन्य भाषा से तुलना करता है। यह तो केवल एक भाषा की एक काल बिन्दु की इकाइयों का वर्णन करता है। इसीलिए इसे 'एककालिक' भाषाविज्ञान भी कहते हैं।

जैसा कि पहले कहा गया है वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का जन्म एक आन्दोलन के रूप में हुआ। 19वीं शताब्दी में विलियम जोन्स ने भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाओं की तुलना से भाषाविज्ञान की नींव डाली। उस समय इसे तुलनात्म्क व्याकरण या तुलनात्मक भाषाविज्ञान कहा जाता था। इस अध्ययन में ऐतिहासिकता के तत्व भी सम्मिलित थे, क्योंकि आधुनिक भाषाओं के साथ–साथ प्राचीन भारतीय और योरोपीय भाषाएं भी इस तुलना का आधार बनी थीं। अतः संस्कृत, ग्रीक, लेटिन आदि भाषाओं से लेकर वर्तमान भाषाओं तक के विकास क्रम को भी अध्ययन में सम्मिलित कर लिया गया था। यह क्रम लगभग चालीस–पचास साल तक चला। इसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय भाषा परिषद ने एककालिक अध्ययन का लक्ष्य स्वीकार किया।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान किसी भाषा की ध्वन्यात्मक और पदात्मक विशेषताओं का आकलन करता है। उसके आकृतिमूलक स्वरूप को रेखांकित करता है तथा वाक्यरचना, शब्दसमूह आदि को लेकर उसका 'वर्णन' करता है। अतः कई भाषाविदों ने इसे व्याकरण का ही एक रूप माना है। यह उचित भी है। यदि हम भाषिक नियमों का एककालिक अध्यन करते हैं, तो उसमें कार्य–कारण के विश्लेषण की गुंजाइश ही नहीं होती। उदाहरणार्थ यदि हम 'जाना' क्रिया के रूपों की मीमांसा करें तो पाएंगे कि 'जाता है', 'जा रहा है', 'जाता था', 'जा रहा था' और 'जायेगा' के साथ 'गया' का मेल नहीं बैठता। यह रूप 'जाया' होना चाहिए था। यह विषमता क्यों उत्पन्न हुई? इस प्रश्न का उत्तर वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के पास नहीं है।

स्व-प्रगति की जाँच करें

सार–संक्षेप

भाषाविज्ञान अपने वर्तमान स्वरूप में एक आधुनिक ज्ञान–शाखा है, जिसका प्रादुर्भाव अठारवीं शती के अंतिम दशकों हुआ। इसके जनक कलकत्ता उच्चन्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश सर बिलियम जोन्स माने जाते हैं। प्राचीन काल में पाश्चात्य देशों में भाषाविज्ञान और व्याकरण के क्षेत्र में उतना गहन अध्ययन नहीं हुआ, जितना भारत में। किन्तु आधुनिक भाषाविज्ञान के स्वरूप निर्माण में पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों का प्रमुख योगदान है।

वस्तुतः भाषाविज्ञान किसी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन से संबंधित है जो इसके नाम से ही ध्वनित होता है। भाषाविज्ञान अर्थात 'भाषा' का 'विज्ञान'। भाषाविज्ञान के अध्ययन–क्षेत्र में प्रमुखतः स्वन–प्रक्रिया, पद या रूपविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थविज्ञान आते हैं।

आज भाषाविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है, जिसके अध्ययन के मुख्य तीन दिशाएँ– 1. ऐतिहासिक, 2. तुलनात्मक और 3. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के रूप में जानी जाती हैं।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर

1. व्युत्पत्ति और रूप की दृष्टि से, 'भाषाविज्ञान' शब्द एक समासयुक्त और अन्वर्थ संज्ञा है जो 'भाषा' और 'विज्ञान' दो शब्दों से निर्मित है। इसका सामान्य अभिधार्य है–भाषा का विज्ञान। ''व्युत्पत्ति की दृष्टि से देखें तो ''भाषा शब्द संस्कृत की 'भास' धातु जिसका अर्थ व्यक्त वाक 'व्यक्तायां वाचि' अर्थात् प्रकट की गयी, कही गयी या उच्चरित की गयी वाणी है तथा 'विज्ञान' शब्द 'वि' उपसर्गपूर्वक 'ज्ञा' धातु में 'ल्युट' (अन्) प्रत्यय लगाने पर बनता है'' जिसका अभिधार्थ है–'विशेष ज्ञान'। अर्थ की दृष्टि से इसका सर्वोत्तम पर्यायी पाश्चात्य शब्द–'फिलालॉजी' (Philology) है जो स्वयं दो ग्रीक शब्दों चैपस. स्वहवे से निर्मित शब्द है तथा जिसमें चैपस 'शब्द' (World) का अर्थ द्योतक है तो स्वहवे या इससे बना स्वहल शब्द विज्ञान (Science) का अर्थद्योतक है। दृष्टव्य बता यह भी है कि भाषाविज्ञान (Philology) नामक विषय का उद्भव भी ग्रीक में ही हुआ माना जाता है। सारांश में, कह सकते हैं कि भाषाविज्ञान वह विषय (शास्त्र या विज्ञान) है जिसमें भाषाविषयक विभिन्न पक्षों का अध्ययन व्यवस्थित अथवा वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है।

   संभवतः इसी आधार पर प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने कहा है–''भाषाविज्ञान का सीधा सा अर्थ है–भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है, विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलाएगा।''

2. प्राचीनकाल में पाश्चात्य देशों में भाषाविज्ञान और व्याकरण के क्षेत्र में उतना गहन अध्ययन नहीं हुआ, जितना भारत में। यूनान में सुकरात, प्लेटो, अरस्तू और डायोनिमस थ्रेक्स आदि के कई भाषावैज्ञानिक विषयों का गम्भीर विवेचन किया है जिनमें सुकरात की शब्द और अर्थ के अन्तःसम्बन्ध की स्थापना, प्लेटो का ध्वनियों का वर्गीकरण तथा अरस्तू का पदविचार उल्लेखनीय है।

   किन्तु इस क्षेत्र में सबसे उल्लेखनीय कार्य थ्रेक्स का है। थ्रेक्स प्रथम योरोपीय व्याकरणकार हैं, जिन्होंने स्वरों और व्यंजनों का दो टूक अन्तर बताते हुए स्वरों को स्वतन्त्र रूप से उच्चरित ध्वनि और व्यंजनों को स्वराश्रित ध्वनि बताया। इसके बाद योरोप में अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक कोई उल्लेखनीय व्याकरणकार नहीं हुआ।

   आधुनिक भाषाविज्ञान के क्रमबद्ध अध्ययन की शुरुआत, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सर विलियम जोन्स से होती है। वे कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रमुख जज थे। उन्होंने संस्कृत सीखी और कलकत्ते में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की। उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर भारत, योरोप और ईरान की प्राचीन भाषाओं के एक स्रोत से उत्पन्न होने की सम्भावना व्यक्त की और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया। कोलबुक, श्लेगल ब्रदर्स, हम्बोलडट, रैस्क, ग्रिम और बॉप ने उनके काम को आगे बढ़ाया और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में काफी काम किया। इन भाषावैज्ञानिकों में रैजमस रैस्क और याकोब ग्रिम का ध्वनियों का तुलनात्म्क अध्ययन विशेष ऐतिहासिक महत्व रखता है। इसे 'ग्रिम नियम' के नाम से जाना जाता है। फ्रांत्ज बॉप ने भी ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन किया, जो स्वरों की तुलना को लेकर था। उन्नीसवीं शताब्दी में भाषावैज्ञानिक अध्ययन में और गहराई आयी। इस काल के भाषाविदों में फ्रैडरिक मैक्समूलर और विलियम ह्विटनी विशेष उल्लेख के हकदार हैं। मैक्समूलर भारतीय वाङ्मय को संसार के सामने प्रतिष्ठित करने वाले पाश्चात्य विद्वानों में अग्रणी माने जाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ग्रासमैन, वर्नर, अस्कोली और येस्पर्सन ने भी भारतीय और योरोपीय भाषाओं की ध्वनियों के तुलनात्मक

अध्ययन में कुछ नये पृष्ठ जोड़े। ग्रासमैन का ध्वनि नियम, जो ग्रिम नियम के अपवादों का वैज्ञानिक निराकरण करता है, इस अध्ययन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

बीसवीं शताब्दी में भाषाविज्ञान के अध्ययन में एक नया मोड़ आया। इससे पूर्व विद्वानों का ध्यान विशेषकर ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन पर केन्द्रित था। फर्दिनां द सस्यूर ने भाषिक अध्ययन को वर्णनात्मक और एककालिक स्वरूप प्रदान किया। 1928 में हेग में अन्तर्राष्ट्रीय भाषाविज्ञान परिषद का प्रथम अधिवेशन हुआ और एककालिक अध्ययन के सिद्धान्त को विश्व स्तर पर स्वीकार किया गया। इसके फलस्वरूप विभिन्न देशों में भाषाविज्ञान के चार केन्द्र स्थापित हुए, जिन्हें लन्दन स्कूल, अमेरिकन स्कूल, प्राग स्कूल और कोपनहैगन स्कूल के नाम से जाना जाता है।

3. ज्ञान–विज्ञान की प्राचीन शाखाओं में व्याकरण का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। भारत में संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश में वैयाकरणों की लम्बी परम्परा रही है, जिनमें पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि, भट्टोजिदीक्षित, भर्तृहरि वररुचि हेमचन्द्र, सूरि और मार्कण्डेय के नाम विशेष सम्मान के साथ लिए जाते हैं।

   पाणिनि संस्कृत व्याकरण के महर्षि हैं। उनकी 'अष्टाध्यायी' सूत्र शैली में लिखा गया ऐसा परिपूर्ण ग्रन्थ है, जो ध्वनि, पद, कृदन्त, तद्धित, सन्धि, समास और लिगानुशासन आदि सभी विषयों का विवेचन करता है। उनकी सबसे बड़ी देन शब्दनिर्माण प्रक्रिया है, जिसके सहारे भारतीय भाषाएँ हजारों वर्षों से अपनी शब्दसम्पदा को समृद्ध बनाती आयी हैं। कात्यायन संस्कृत व्याकरण में वार्तिककार के नाम से जाने जाते हैं। उन्होंने लगभग 1500 वार्षिक लिखे, जो कहीं पाणिनि के सूत्रों का स्पष्टीकरण करते हैं, तो कहीं छूटी हुई बात को पूरा करते हैं। पतंजलि सूत्रों के भाष्यकार हैं। उनका ग्रन्थ 'महाभाष्य' व्याकरण का प्रौढ़ ग्रन्थ है।

   भट्टोजिदीक्षित ने संस्कृत व्याकरण के सिद्धान्तों को सरल शैली में प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'अष्टाध्यायी' के सूत्रों को विषय के अनुसार वैज्ञानिक क्रम दिया है। सूत्रों को स्पष्ट किया है और यथास्थान नियमों के उदाहरण दिये हैं। उनकी 'सिद्धान्तकौमुदी' संस्कृत व्याकरण का प्रवेश द्वार है। भर्तृहरि मौलिक व्याकरणकारों में अग्रणी हैं। उनका 'वाक्यपदीय' पदों और वाक्यों के आपेक्षिक महत्व की मीमांसा करता है। वे वाक्य को भाषा की एकमात्र सार्थक इकाई मानते हैं। जिस वाक्यवाद को आधुनिक विद्वान भाषा–चिन्तन की महान् उपलब्धि मानते हैं, उसका प्रतिपादन बरसों पहले 'वाक्यपदीय' में सम्पूर्णता के साथ विद्यमान है।

4. आधुनिक काल में हिन्दी के भाषाविदों ने भी इसे 'भाषाशास्त्र', 'भाषालोचन' और 'भाषिकी' आदि कई नामों से अनिहित किया है। परन्तु इनमें से कई नाम लोकप्रिय नहीं हो पाया। यों तो 'भाषाविज्ञान' नाम भी सर्वथा निर्दोष नहीं है और भाषा के अध्ययन को रसायनविज्ञान और भौतिक विज्ञान जैसे शुद्ध विज्ञानों की पंक्ति में बैठा देता है, जबकि भाषिक नियम उतने ठोस और निरपवाद नहीं होते। फिर भी 'भाषाविज्ञान' नाम इस ज्ञान शाखा की प्रकृति के अधिक निकट है।

   भाषाविज्ञान भाषा के विभिन्न अवयवों और पहलुओं का विवेचन करने वाली वह विद्याशाखा है जिसमें उसकी संरचना, प्रकृति और विकास की विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

   जैसा कि पिछले पृष्ठों में उल्लेख किया गया है, भाषा–विज्ञान का अध्ययन 'तुलना' से प्रारम्भ हुआ और वह 'इतिहास तथा विकासक्रम' से होता हुआ 'एककालिकता' और 'वर्णनात्मकता' तक पहुंचा। इन दिशाओं ने भाषाविज्ञान की परिभाषाओं को भी प्रभावित किया है। डॉ. भोलनाथ तिवारी लिखते हैं कि, ''जिस विज्ञान के अन्तर्गत समकालीन, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रायोगिक अध्ययन के सहारे भाषा सामान्य की उपत्पत्ति, गठन, प्रकृति और विकास आदि की सम्यक् व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिद्धान्तों का निर्धारण हो उसे 'भाषाविज्ञान' कहते हैं।

5. इतिहास अतीत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थितियों का विकासात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इतिहास की घटनाओं का भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भाषा के स्वरूपतामक परिवर्तन हेतु ऐतिहासिक घटनाएँ पर्याप्त जिम्मेदार होती हैं। राजनीतिक विप्लव, आक्रमण या अन्य कारणों से स्थानान्तरित होने वाली जाति सब दूसरी भाषा जाति के संपर्क में आती हैं तो भाषिक परिवर्तन की गति तेज हो जाती हैं। आभीर आदि जातियों ने भारत में आकर यहाँ की प्रचलित प्राकृतों को बदलकर अपभ्रंश में ढाल दिया। उनके विचारों, रीति–रिवाजों, मान्यताओं तथा धार्मिक आस्था से संबंधित बहुत–सी शब्दावली का भाषा में प्रवेश हुआ। भारतीय भाषाओं में विदेशी शब्दों के समावेश का कारण ऐतिहासिक है। इतिहास से ही यह ज्ञात होता है कि सोने की चिड़िया समझा जाने वाला भारत सदैव विदेशियों की धन लोलुपता का शिकार होता रहा है। समय–समय पर उनके आक्रमण होते रहे हैं। कुछ विदेशी जातियों का यहाँ राजनीतिक आधिपत्य भी स्थापित हुआ। इन्हीं कारणों से भाषा में विदेशी तत्त्वों का समावेश हुआ।

अभ्यास–प्रश्न

1. भाषा की परिभाषाएँ देते हुए उसका अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. भाषाविज्ञान के स्वरूप का निर्धारण कीजिए।
3. भाषाविज्ञान की प्रमुख शाखाओं का उल्लेख करते हुए किसी एक का परिचय दीजिए।
4. भाषाविज्ञान के अध्ययन की प्रमुख दिशाओं का परिचय दीजिए।
5. भाषाविज्ञान की व्याप्ति पर अपने विचार प्रकट कीजिए।